६ कर्म-विचार

☐ डॉ० आदित्य प्रचण्डिया 'दीति'

मिथ्यात्व आदि हेतुओं से निष्पन्न क्रिया कर्म है।[१] कर्म आत्मा को मलिन करते हैं। उनकी गति गहन है।[२] वह दुःख परम्परा का मूल है।[३] कर्म मोह से उत्पन्न होता है और वह जन्म-मरण का मूल कारण भी है।[४] संसारी जीव के रागद्वेष रूप परिणाम होते हैं। परिणामों से कर्मबंध के कारण जीव संसार चक्र में परिभ्रमण करता है।[५] वस्तुतः कर्मबंध में आत्मपरिणाम (भाव) ही कारण है पर वस्तु बिल्कुल नहीं।[६] कर्म बंध वस्तु से नहीं, राग और द्वेष के अध्यवसाय (संकल्प) से होता है।[७] जो अन्दर में रागद्वेष रूप भाव कर्म नहीं करता, उसे नए कर्म का बंध नहीं होता।[८] जिस समय जीव जैसे भाव करता है वह उस समय वैसे ही शुभ-अशुभ कर्मों का बंध करता है।[९]

कर्म कर्त्ता का अनुगमन करता है।[१०] जीव कर्मों का बंध करने में स्वतन्त्र है परन्तु उस कर्म का उदय होने पर भोगने में उसके अधीन हो जाता है। जैसे कोई पुरुष स्वेच्छा से वृक्ष पर तो चढ़ जाता है किन्तु प्रमादवश नीचे गिरते समय परवश हो जाता है।[११] कहीं जीव कर्म के अधीन होते हैं तो कहीं कर्म जीव के अधीन होते हैं।[१२] जैसे कहीं ऋण देते समय धनी बलवान होता है तो कहीं ऋण लौटाते समय कर्जदार बलवान होता है।[१३] सामान्य की अपेक्षा कर्म एक है और द्रव्य तथा भाव की अपेक्षा दो प्रकार का है। कर्म पुद्गलों का पिण्ड द्रव्यकर्म है और उसमें रहने वाली शक्ति या उनके निमित्त से जीव में होने वाले रागद्वेष रूप विकार भावकर्म है।[१४] जो इन्द्रिय आदि पर विजय प्राप्त कर उपयोगमय (ज्ञानदर्शनमय) आत्मा का ध्यान करता है वह कर्मों से नहीं बंधता। अतः पौद्गलिक प्राण उसका अनुसरण कैसे कर सकते हैं? अर्थात् उसे नया जन्म धारण नहीं करना पड़ता है।[१५]

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय ये संक्षेप में आठ कर्म हैं।[१६] इन कर्मों का स्वभाव परदा, द्वारपाल, तलवार, मद्य, हलि, चित्रकार, कुम्भकार तथा भण्डारी के स्वभाव सदृश है।[१७] जो आत्मा के ज्ञान गुण को प्रकट न होने दे उसे ज्ञानावरण कहते हैं। जो दर्शनगुण को

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

आवृत्त करे उसे दर्शनावरण कहते हैं। जो सुख-दुःख का कारण हो उसे वेदनीय कहते हैं। जिसके उदय से जीव अपने स्वरूप को भूलकर पर पदार्थों में अहंकार तथा ममकार करे उसे मोहनीय कहते हैं। जिसके उदय से जीव नरकादि योनियों में परतन्त्र हो उसे आयुकर्म कहते हैं। जिसके उदय से शरीरादि की रचना हो वह नाम कर्म है। जिसके उदय से उच्च-नीच कुल में जन्म हो उसे गोत्रकर्म कहते हैं और जिसके द्वारा दान, लाभ आदि में बाधा प्राप्त हो उसे अन्तराय कर्म कहते हैं।[१८] ज्ञानावरण की पाँच, दर्शनावरणी की नौ, वेदनीय की दो, मोहनीय की अट्ठाईस, आयु की चार, नाम की तिरानवे, गोत्र की दो और अन्तराय की पाँच इस प्रकार सब मिलाकर एक सौ अड़तालीस उत्तर प्रकृतियां हैं।[१९] शुभोपयोग रूप निमित्त से जो कर्म बंधते हैं वे पुण्य कर्म तथा अशुभोपयोग रूप निमित्त से जो कर्म बंधते हैं वे पाप कर्म कहलाते हैं। इस प्रकार निमित्त की अपेक्षा कर्मों के दो भेद हैं।[२०]

कर्म आत्मा का गुण नहीं है क्योंकि आत्मा का गुण होने से वह अमूर्तिक होता और अमूर्तिक का बंध नहीं हो पाता। अमूर्तिक कर्म, अमूर्तिक आत्मा का अनुग्रह और निग्रह उपकार और अपकार करने में समर्थ नहीं होता।[२१] यद्यपि कर्म सूक्ष्म होने के कारण दृष्टिगोचर नहीं होता तथापि वह मूर्तिक है क्योंकि उसका कार्य जो औदारिक आदि शरीर है वह मूर्तिक है। मूर्तिक की रचना मूर्ति से ही हो सकती है इसलिए दृश्यमान औदारिकादि शरीरों से अदृश्यमान कर्म में मूर्तिपना सिद्ध होता है।[२२]

निश्चय नय से आत्मा और कर्म दोनों द्रव्य स्वतन्त्र, स्वतन्त्र द्रव्य हैं इसलिए इनमें बंध नहीं है परन्तु व्यवहार नय से कर्म के अस्तित्वकाल में आत्मा स्वतन्त्र नहीं है इसलिए दोनों में बंध माना जाता है। व्यवहार नय से आत्मा और कर्मों में एकता का अनुभव होता है इसलिए आत्मा को मूर्तिक माना जाता है। मूर्तिक आत्मा का मूर्तिक कर्मों के साथ बंध होने में आपत्ति नहीं है।[२३]

इस प्रकार संसार का प्रत्येक प्राणी परतन्त्र है। यह पौद्गलिक (भौतिक) शरीर ही उसकी परतन्त्रता का द्योतक है। पराधीनता का कारण कर्म है जगत में अनेक प्रकार की विषमताएं हैं। आर्थिक और सामाजिक विषमताओं के अतिरिक्त जो प्राकृतिक विषमताएं हैं उनका हेतु मनुष्यकृत नहीं हो सकता। विषमताओं का कारण प्रत्येक आत्मा के साथ रहने वाला कोई विजातीय पदार्थ है और वह पदार्थ कर्म है। कारण के बिना कोई कार्य नहीं हो सकता। जैसे आग में तपाने की विशिष्ट प्रक्रिया से सोने का विजातीय पदार्थ उससे पृथक् हो जाता है वैसे ही तपस्या से कर्म दूर हो जाता है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

संदर्भ संकेत—

१—क्रियन्ते मिथ्यात्वादिहेतुभिर्जीवेनेति कर्माणि ।

—उशाटी प. ६४१

२—गहना कर्मणो गतिः ।

—ब्रह्मानंद गीता ४४

३—(क) कम्मेहिं लुप्पंति पाणिणो ।

—सूत्र कृतांग २।१।४

(ख) कम्मुणा उवांहि जायइ ।

—आचारांग ३।१

४—कम्मं च मोहप्पभवं वयंति,
कम्मं च जाइ-मरणस्स मूलं ।

—उत्तराध्ययन ३२।७

५—अज्झत्थहेउं नियस्स बंधो,
संसार हेउं च वयंति बंध ।

—उत्तराध्ययन सूत्र १४।१९

६—अणुमित्तो वि न बंधो,
परवत्थुपच्चओ भणिओ ।

—ओघनिर्युक्ति, गाथा ५३

७—ण य वत्थुदो दु बंधो,
अज्झवसाणेण बंधोत्ति ।

—समयसार २६५

८—अकुव्वओ णवं णत्थि ।

—सूत्रकृतांग १।१५।७

९—जं जं समयं जीवो आविसइ जेण जेण भावेण ।
सो तंमि तंमि समए, सुहासुहं बंधए कम्मं ।।

समणसुत्तं, ज्योतिर्मुख, ब्र० जिनेन्द्रवर्णी,
सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी-१,
प्रथम संस्करण २४ अप्रैल १९८५, श्लोकांक ५७,
पृष्ठांक २०-२१

१०—(क) कत्तारमेव अणुजाइ कम्मं ।

—उत्तराध्ययन १३।२३

(ख) शेते सह शयानेन, गच्छन्तमनु गच्छति ।
नराणां प्राक्तनं कर्म, तिष्ठत्यथ सहात्मनः ।।

—पंचतंत्र २।१३०

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

(ग) यथोधेनुसहस्रेषु, वत्सो विन्दतिमातरम् ।
तथैवेह कृतं कर्म, कर्तार मनुगच्छति ।।
—चाणक्यनीति १२।१५

११—कम्मं चिणंति सवसा, तस्सुदयाम्मि उपरव्वसा होंति ।
रूक्खं दुरूहइ सवसो, विगलइ स परव्वसो तत्तो ।।
—समणसुत्तं, ज्योतिर्मुख, वही, श्लोकांक ६०,
पृष्ठांक २०-२१

१२—कमयित्तं फलं पुंसां, बुद्धिः कर्मानुसारिणी ।
—चाणक्यनीति १३।१०

१३—कम्मवसा खलु जीवा, जीववसाइं कहिंचि कम्माइं ।
कत्थइ धणिओ बलवं, धारणिओ कत्थई बलवं ।।
—समणसुत्तं, ज्योतिर्मुख, वही, श्लोकांक ६१,
पृष्ठांक २०-२१

१४—(क) कम्मत्तणेण एक्कं, दव्वं भावोत्ति होदि दुविहं तु ।
पोग्गल पिंडो दव्वं, तस्सत्ती भावकम्मं तु ।।
—समणसुत्तं, ज्योतिर्मुख, वही, श्लोकांक ६२,
पृष्ठांक २०-२१

(ख) अर्हत्प्रवचन, सम्पादक—चैनसुखदास न्यायतीर्थ, आत्मोदय ग्रंथमाला जयपुर, सितम्बर १९६२, श्लोकांक ७, पृष्ठांक १८

१५—(क) जो इंदियादि विजई, भवीय उवओग मप्पंग आदि ।
कम्मेहिं सो ण रंजदि, किह तं पाणा अणुचरंति ।।
—समणसुत्तं, ज्योतिर्मुख, वही, श्लोकांक ६३,
पृष्ठांक २०-२१

(ख) कम्मबीएसु दडढेसु, न जायंति भवंकुरा ।
—दशाश्रुत स्कंध ५।१५

(ग) अकम्मस्स ववहारो न विज्जई ।
—आचारांग ३।१

१६—(क) नाणस्सावरणिज्जं दंसणावरणं तहा ।
वेयणिज्जं तहा मोहं, आउकम्मं तहेव य ।।
नाम कम्मं च गोयं च, अंतरायं तहेव य ।
एवमेयाइं कम्माइं, अट्ठेव उ समासओ ।।
—समणसुत्तं, ज्योतिर्मुख, वही, श्लोकांक ६४-६५
पृष्ठांक २२-२३

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

(ख) ज्ञानदर्शनयो रोधौवेद्यं मोहायुषी तथा ।
नाम गोत्रान्तरायाश्च मूल प्रकृतयः स्मृताः ।।

—तत्त्वार्थसार, पंचमाधिकार, सम्पादक पण्डित पन्नालाल साहित्याचार्य, श्री गणेशप्रसाद वर्णी ग्रंथमाला, डुमराव बाग, अस्सी, वाराणसी-५, प्रथम संस्करण १६ अप्रेल १६७०, श्लोकांक २२, पृष्ठांक १४५

(ग) अट्ठ कम्मपगडीओ पन्नत्ताओ, तं जहा णाणावरणिज्जं दंसणावरणिज्जं, वेयणिज्जं, मोहणिज्जं, आउयं, नामं, गोयं, अंतराइयं ।

—प्रज्ञापना २१।१

१७—(क) पड-पडिहार-सि-मज्ज, हड-चित्त-कुलाल-भंडगारीणं ।
जह एसिं भावा, कम्माण वि जाण तह भावा ।।

—समणसुत्तं, ज्योतिर्मुख, वही, श्लोकांक ६६, पृष्ठांक २२-२३

(ख) अर्हत्प्रवचन, सम्पादक पं० चैनसुखदास न्यायतीर्थ, वही, श्लोकांक १०, पृष्ठांक १६ ।

१८—अपभ्रंश वाङमय में व्यवहृत पारिभाषिक शब्दावलि, डॉ. आदित्य प्रचण्डिया 'दीति' परामर्श, खंड ५, अंक ४, सितम्बर १६८४, सम्पादक सुरेन्द्र बारलिंगे आदि, पुणे विश्वविद्यालय प्रकाशन, पुणे, पृष्ठांक ३२४ ।

१६—अन्याः पञ्च नव द्वे च तथाष्टाविंशतिः क्रमात ।
चतस्रश्च त्रिसंयुक्ता नवतिर्द्वे च पञ्च च ।।

—तत्त्वार्थसार, पंचमाधिकार, वही, श्लोकांक २३, पृष्ठाक १४६-१५५ ।

२०—(क) शुभाशुभोपयोगाख्यनिमित्तो द्विविधस्तथा ।
पुण्य-पाप तया द्वेधा सर्व कर्म प्रभिद्यते ।।

—तत्त्वार्थसार, पंचमाधिकार, श्लोकांक ५१, पृष्ठांक १५८ ।

(ख) सुह परिणामो पुण्णं, असुहो पावं ति हवदि जीवस्स ।

—पंचास्तिकाय १३२

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

२१—न कर्मात्म गुणोऽमूर्ते स्तस्य बन्धाप्रसिद्धितः ।
अनुग्रहोपघातौ हि नामूर्तेः कर्तुमर्हति ।।

—तत्त्वार्थसार, पंचमाधिकार, श्लोकांक १४, पृष्ठांक १४३

२२—औदारिकादि कार्याणां कारणं कर्ममूर्तिमत ।
न ह्यमूर्तेन मूर्तानामारम्भः क्वापि दृश्यते ।।

—तत्त्वार्थसार, पंचाधिकार, श्लोकांक १५, पृष्ठांक १४३

२३—तत्त्वार्थसार, पंचमाधिकार, वही, श्लोकांक १६-२०, पृष्ठ १४४-१४५

□ □ □

कर्म-सूक्तियाँ

सकम्मुणा किच्चइं पावकारी,
कडाण कम्माण ण मोक्ख अत्थि ।

—उत्तराध्ययन ४।३

पापात्मा अपने ही कर्मों से पीड़ित होता है, क्योंकि कृतकर्मों का फल भोगे बिना छुटकारा नहीं है ।

पक्के फलम्हि पडिए, जह ण फलं बज्झए पुणो विंटे ।
जीवस्स कम्मभावे, पडिए ण पुणोदयभुवेई ।।

—समयसार १६८

जिस प्रकार पका हुआ फल गिर जाने के बाद पुनः वृन्त से नहीं लग सकता, उसी प्रकार कर्म भी आत्मा से विमुक्त होने के बाद पुन, आत्मा (वीतराग) को नहीं लग सकते ।

रागो य दोसो वि य कम्मबीयं,
कम्मं च मोहप्पभवं वयंति ।
कम्मं च जाईमरणस्स मूलं,
दुक्खं च जाईमरणं वयंति ।।

—उत्तराध्वयन ३२।७

राग और द्वेष ये दो कर्म के बीज हैं । कर्म मोह से उत्पन्न होता है । कर्म ही जन्म-मरण का मूल है और जन्म-मरण ही वस्तुतः दुःख है ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org